राजर्षि के पुत्र महेंद्र विक्रम सिंह जी का चेचक से निधन हो गया। पहले से ही वैराग्य मय जीवन व्यतीत कर रहे राजर्षि महा निराशा में डूब गये। जब यह सूचना और राजर्षि की स्थिति की जानकारी बाबू प्रसिद्ध नारायन सिंह को हुई तो उन्होंने बाबू चन्द्रिका प्रसाद सिंह जी (शिवपुर दीयर, बलिया) और ठा. काली प्रसाद सिंह के साथ शोक संवेदना व्यक्त करने पहुंचे। बाबू साहब ने ही पहल करते हुए कहा महाराज पुत्र–वियोग जैसा दुःख इस धरा पर दूसरा कोई नहीं। कितना ही बड़ा सार्थक प्रयास क्यों न हो उस स्थान की पूर्ति सम्भव नहीं। फिर भी ज्यादा शोकाकुल होना आप जैसे महापुरुष की गरिमा के अनुकूल नहीं। आप तो वह कार्य करने में सक्षम हैं जिससे एक क्या हजारों पुत्र पैदा हो सकते हैं, जो देश और जाति की सेवा कर सदियों तक आपके नाम को अमर कर सकते हैं। राजर्षि में जैसे चेतना लौट आयी, उनमें सोया हुआ महापुरुष जाग उठा, उन्होंने महारानी साहिबा को बुला कर बाबू प्रसिद्ध नारायण के शब्दों को अक्षरशः दोहराया, "अब मैं वही कार्य करूँगा मेरे एक नहीं हजारों पुत्र पैदा हों जो देश और क्षत्रिय जाति की सेवा करें"।

सन् 1908 में राजर्षि ने साढे दस लाख रूपये का अमरदान देकर काशी में एक विद्यालय खोलने का संकल्प लिया। स्थान के चयन और विद्यालय के स्थापना की जिम्मेदारी बाबू प्रसिद्ध नारायण सिंह ने सम्हाली। राजर्षि की इच्छा थी कि विद्यालय शहर से दूर हो। तदनुसार वरूणा पार काशी के पश्चिमोत्तर सीमा पर कुर्ग स्टेट (कर्नाटक) की 50 एकड़ के भू–खण्ड का चुनाव किया गया। इसके लिए राजर्षि ने संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर जान हिवेट को पत्र लिखा। बाबू साहब ने भी जान हिवेट से अपनी मित्रता का उपयोग किया और उस भू–खण्ड को सांकेतिक मूल्य पर 'क्षत्रिया खैरात सोसाइटी' के पक्ष में अधिग्रहित कराया। बाबू प्रसिद्ध नारायण सिंह की देख–रेख में 25 नवम्बर 1909 को तत्कालीन गवर्नर सर जान हिवेट ने विद्यालय का शिलान्यास किया। बाबू साहब ने नींव पूजन का संकल्प लिया। सात नदियों के जल से भूमि का शोधन किया गया। गवर्नर के नाम पर विद्यालय का नाम 'हिवेट क्षत्रिय हाई स्कूल' पड़ा। बाबू प्रसिद्ध नारायण सिंह जी को प्रबंध समिति का अध्यक्ष बनाया गया।

राजर्षि ने एक अनाथाश्रम, भिनगाराज अनाथालय कमच्छा बनारस में स्थापित किया और 1 लाख 23 हजार रूपये प्रदान कर स्थायी कोष बनाया जिससे उसमें होने वाले लगातार खर्चों को पूरा किया जा सके। राजर्षि ने लाखों रूपये विभिन्न सामाजिक संगठनों को प्रदान किये जिनमें के.जी. मेडिकल कॉलेज, लखनऊ, मुलधान कुटी विहार, सारनाथ, कैल्विन ताल्लुकेदार कॉलेज, लखनऊ, हिंदी प्रचारिणी सभा आदि। उन्होंने ब्याज के रूप में होने वाली आय से विद्यार्थियों को स्थाई स्कॉलरशिप प्रदान करने की भी व्यवस्था की। राजर्षि के विचारों का साम्य सर सैयद अहमद खान और भारत रत्न महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी से रहा इसलिए उनका मुख्य बिंदु शैक्षणिक व्यवस्था पर रहा।

महान सामाजिक उत्थान एवं शैक्षणिक विकास के ये अमर पुरोधा 15 जुलाई 1913 ई. को दुनिया को अलविदा करके चल बसे। राजर्षि के दिवंगत होने के बाद जब 1921 में इंटरमीडिएट और हाई स्कूल एक्ट बना और इस हिवेट विद्यालय में भी इण्टर की कक्षाएँ खुलीं तब बाबू प्रसिद्ध नारायण सिंह जी के ही प्रस्ताव और सद्प्रयास से हिवेट क्षत्रिया हाई स्कूल के साथ राजर्षि का नाम जोड़ा गया। इस प्रकार वर्तमान में उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय राजर्षि राजा उदय प्रताप सिंह जूदेव के तन–मन–धन से फल–फूल रहा है और आज देश की प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थाओं में विख्यात है।

– धीरेन्द्र सिंह जादौन
मिडिया सलाहकार,नार्थ इंडिया अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा
सवाईमाधोपुर, राजस्थान

बदलते परिप्रेक्ष्य में खाद्यान्न उत्पादन की चुनौतियाँ

खाद्यान्न उत्पादन की अनेक चुनौतियाँ हैं, जिनमें जलवायु परिवर्तन सबसे बड़ी चुनौती है। जलवायु परिवर्तन अब एक वास्तविकता है, इसीलिए सम्पूर्ण विश्व में इसकी चर्चा हो रही है और इससे होने वाले नकारात्मक परिणामों से निजात पाने के उपाय तलाशे जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम में आ रही अनिश्चितता सबसे बड़ी चिन्ता का विषय है, क्योंकि इससे खेती–बारी पर पड़ने वाला प्रभाव सीधे–सीधे हमारे जीवकोपार्जन से जुड़ा है। मौसम की अनिश्चितता के कारण कभी बाढ़, कभी सूखा, तो वहीं कभी तापमान का अचानक बढ़ या घट जाना आदि जैसी बातें आज आम हो गयी हैं। साथ ही नये–नये कीट व बीमारियों का उद्भव, खरपतवार की बहुलता, दिन–प्रतिदिन भू–जल का गिरता स्तर, रसायनों के अविवेकपूर्ण प्रयोग से बढ़ता प्रदूषण और अस्वस्थ होती जमीनें, आदि ऐसे अनेक लक्षण हैं, जो अब बहुधा देखे जा रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में खाद्यान्न उत्पादन का सतत् एवं स्थाई विकास आज की सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है।

दूसरी बड़ी समस्या प्राकृतिक संसाधनों के निरन्तर ह्रास होने के कारण उत्पन्न हो रही है। एक तरफ जहाँ जल की कमी हो रही है, वहीं ऊर्जा की उपलब्धता भी कोई छोटी समस्या नहीं है। खाद व पौध–सुरक्षा हेतु उपयोग होने वाले रसायनों पर भी सवाल उठने लगे हैं, क्योंकि वे उत्पादन बढ़ाने में मदद तो अवश्य करते हैं, पर उनके प्रयोग के कारण मिट्टी, जल और वायु में प्रदूषण बेतहासा फैल रहा है। इसलिए उनके उपयोग के खिलाफ आवाजें उठने लगी हैं। खेती के लिए उपयुक्त जमीनों पर रिहायसी मकान व कारखानें बन रहे हैं। परिणामस्वरूप खेती के लिए जमीनें कम होती जा रही हैं। इसी तरह खेती के लिए मजदूरों की कमी भी किसानों की एक बड़ी समस्या मानी जाने लगी है, जो मनरेगा परियोजना के कारण और भी विकट हो गयी है। आज खेती के लिए आवश्यक संसाधनों की बेहद कमी हो रही है और उनके दिनों दिन कमतर होते रहने की सम्भावना भी अधिक है। स्पष्टतः आज की दूसरी चुनौती यह है कि कम–से–कम संसाधनों के बल पर अधिक–से–अधिक खाद्यान्न का उत्पादन कैसे सुनिश्चित किया जाए?

तीसरी बड़ी समस्या देश में साल–दर–साल तेजी से बढ़ती जनसंख्या की है जिसके कारण खाद्यान्न की माँग भी तेजी से बढ़ रही है। तो क्या हम आने वाले दिनों में इस अनवरत् बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न की माँग की पूर्ति कर सकेंगे? आज यह एक अहम प्रश्न बन गया है।

सन् 2011–12 में जब हमारे देश की आबादी 120 करोड़ थी खाद्यान्न की माँग 218.9 मिलियन टन थी। वर्तमान में हमारी आबादी बढ़ कर 128.3 करोड़ हो गई है तथा खाद्यान्न की माँग 235.7 मिलियन टन की है और उम्मीद की जाती है कि सन् 2020–21 में हमारी आबादी 134.5 करोड़ हो जायेगी तथा सन् 2021 में और 40 मिलियन टन से लेकर 74 मिलियन टन तक 2026 में पूर्ति के कम होने की सम्भावना है। 2026–27 में खाद्यान्न उत्पादन की माँग भी 265.24 मिलियन टन हो जायेगी। यदि बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए कुल अनाज की माँग व पूर्ति की स्थिति को देखा जाए, तो सन् 2021 में 3 मिलियन टन और 2026 में 17 मिलियन टन माँग की अपेक्षा पूर्ति के कम होने का अनुमान है। दलहन, तिलहन और चीनी की स्थिति तो और भी गम्भीर होने वाली है, यानी माँग की अपेक्षा लगभग 24 मिलियन टन से लेकर 40 मिलियन टन तक ।

संक्षेप में, हमारी आज की सबसे बड़ी समस्या, जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों के बावजूद, कम–से–कमतर होते संसाधनों द्वारा, अधिक–से–अधिक कृषि उपज प्राप्त करना है, ताकि हम बढ़ती हुई आबादी को भरपूर भोजन मुहैया करा सकें।

खेती–बारी में आने वाली समस्याओं को कम करने के लिए किसानों को वैज्ञानिक द्वारा विकसित नई तकनीकों को अपनाना पड़ेगा। इससे जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के साथ ही साथ उत्पादकता में भी सतत विकास कर सकेंगें। विभिन्न उन्नतशील प्रजातियों के साथ–साथ कई नवीन सस्य–विधियों का विकास भी किया गया है जिनके प्रयोग से जल और ऊर्जा की बचत तो होती ही है, खेती में होने वाली लागत भी कम हो जाती है और उत्पादन बढ़ जाता है। जलवायु परिवर्तन के लिए कहीं न कहीं हम स्वयं भी जिम्मेदार हैं। अतः हमे भविष्य में ऐसा कुछ भी न करने का संकल्प लेना चाहिए जिससे कि पर्यावरण को कोई नुकसान पहुँचे। प्रकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। फसल की सिंचाई नालियों या क्यारियों की सहायता से अथवा सिंचाई की आधुनिक पद्धतियों स्प्रींक्लर तथा ड्रिप सिस्टम से भी पानी की भारी बचत की जा सकती है। गाँव के तालाब, पोखरों और जलाशयों का पुनरुद्धार भूस्तरीय जल के भण्डार को बढ़ाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

जलवायु परिवर्तन के कारण हो रहीं नई–नई समस्याओं को शोध. संस्थानों व कृषि–विश्वविद्यालयों की शोध परियोजाओं में जोड़ने की आवश्यकता है तथा उनकों दूर करने हेतु उपायों को किसानों तक पहुँचाना भी अत्यन्त आवश्यक है। कृषि और कृषि से सम्बन्धित अन्य पहलुओं के सन्दर्भ में लागू सरकारी नितियों पर भी आज पुनः विचार करने की जरूरत है।

– राम कठिन सिंह
कार्यकारी निदेशक, नेफोर्ड, लखनऊ (उ.प्र.)

शून्य लागत प्राकृतिक कृषि पद्धति

प्राचीन काल से ही देश में कृषि होती आ रही है लेकिन कृषि पद्धति समय व आवश्यकता के अनुसार बदलती रही है। कृषि पद्धति बदलने का मुख्य कारण बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति करना और साथ ही साथ देश को आर्थिक क्षेत्र में आगे बढ़ाना है। ऐसी मान्यता है कि प्राचीन भारतीय कृषि लगभग 5000 वर्ष पहले भगवान श्री कृष्ण द्वारा शुरू की गयी जो गाय के गोबर की खाद पर आधारित थी तथा पूर्ण जैविक थी। एक अनुमान के अनुसार एक एकड़ क्षेत्रफल में लगभग 19 मैट्रिक टन गोबर की खाद की आवश्यकता होगी जिसके लिए 10 गाय पालनी या रखनी होंगी। देश में लगभग 45 करोड़ एकड़ खेती योग्य भूमि है, जिसके लिए 450 करोड़ गायों की आवश्यकता पड़ेगी जो करीब–करीब असम्भव है क्योंकि वर्तमान में सिर्फ लगभग 8 करोड़ गाये हैं। सिर्फ गोबर की खाद के प्रयोग से एक तो हानिकारक हरित गृह गैसें निकलती हैं, जो वातावरण को प्रदूषित करती हैं और दूसरा बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है। कृषि वैज्ञानिकों के प्रयास से अधिक पैदावार लेने के लिए 'हरित क्रांति' आयी जिससे बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव हुई और साथ ही साथ देश की आर्थिक स्थिति भी सुधरी। रसायनिक या हरित खेती में प्राकृतिक स्त्रोतों का काफी दुरूपयोग हुआ है। इस पद्धति में ज्यादातर पैसा विकसित देशों को जाता है क्योंकि ज्यादातर कृषि निवेश विदेशी ही होते हैं। इससे देश की आर्थिक स्थिति भी कमजोर होती है। प्राकृतिक पद्धति एक जापानी कृषक, मासानोबू फुकुओका द्वारा विकसित की गयी जिसमें सिर्फ बीज खेत में डालना था और फिर पकने के बाद काट लेना था जो सम्भव नही है। फिर एक पद्धति रसायनिक कृषि के बदले आई जिसे जैविक खेती कहते है। यह पद्धति कम्पोस्ट, फार्म की खाद और वर्मीकम्पोस्ट पर आधारित है। यह पद्धति रसायनिक कृषि से भी महंगी पड़ती है और विभिन्न प्रकार की हरित गृह गैसों को निकालती है जिससे पूरा वातावरण दूषित होता है। इसमें मिट्टी के अंदर प्राकृतिक रूप से उर्वरता ह्यूमस नहीं बनता है और मिट्टी के अंदर सूक्ष्म जीवाणु और देशी केचूओं के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ पैदा करते हैं जिससे इनकी संख्या काफी घट गयी है।

उपर्युक्त कृषि पद्धतियों के गुण व अवगुण को ध्यान में रखते हुए एक नयी पद्धति हमारे ही देश के किसान श्री सुभाष पालेकर द्वारा विकसित की गयी है, जिसे शुन्य लागत प्राकृतिक खेती–कृषि कहते हैं। यह पद्धति शून्य लागत अर्थात् अपने घर में उपलब्ध कृषि वस्तुओं–इनपुट्स से की जाती है। शुन्य लागत प्राकृतिक कृषि में लागत को शून्य कहा जाता है क्योंकि मुख्य फसल का लागत अन्तर्वर्तीय फसलों के या मिश्र फसलों के उत्पादन से निकल जाता है और मुख्य फसल बोनस के रूप में मिल जाती है। फसलों की वृद्धि, विकास एवं उत्पादन के लिए जिन–जिन संसाधनों की आवश्यकता होती है, उन सभी को घर में ही उप्लब्ध कराना , किसी भी हालत में बाजार से कोई भी चीज न खरीदना एवं प्राकृतिक स्त्रोतों को नुकसान करने वाले संसाधन का निर्माण घर में न करना शून्य लागत प्राकृतिक खेती के मुख्य उद्देश्य हैं ।

इस पद्धति में यह माना जाता है की पौधों को बढ़ने के लिए जो संसाधन चाहिए वे सभी उनकी जड़ों के आसपास भूमि में और पत्तों के पास वातावरण में ही पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। हमारी भूमि अन्नपूर्णा कही जाती है क्योंकि पौधों को पर्याप्त भोजन उपलब्ध करवाती है। फसल पौधे 98 से 98.5 प्रतिशत आवश्यक पोषक तत्व हवा, पानी, व सूर्य की रोशनी से लेते हैं जबकि शेष मात्रा (1.5 से 2 प्रतिशत) भूमि से लेते हैं। अक्सर यह कहा जाता है कि भूमि में पोषक तत्त्वों की कमी है जिसकी पूर्ति